अन्तर है। अन्तर यह है कि निर्ग्रन्थ-परंपरा में अपरिग्रह पंचम व्रत है जब कि बौद्ध परंपरा में मद्यादि का त्याग पाँचवाँ शील है।

यहाँ एक प्रश्न यह भी होता है कि क्या खुद महावीर ने ब्रह्मचर्य रूप से नए व्रत की सृष्टि की या अन्य किसी परंपरा में प्रचलित उस व्रत को अपनी निर्ग्रन्थ-परंपरा में स्वतंत्र स्थान दिया? सांख्य-योग-परंपरा के पुराने से पुराने स्तरों में तथा स्मृति आदि ग्रन्थों में हम अहिंसा आदि पांच-यमों का ही वर्णन पाते हैं। इसलिए निर्णयपूर्वक तो कहा नहीं जा सकता कि पहले किसने पाँच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य को स्थान दिया?

यद्यपि बौद्ध ग्रन्थों में बार-बार चतुर्याम का निर्देश आता है पर मूल पिटकों में तथा उनकी अट्ठकथाओं में चतुर्याम का जो अर्थ किया गया है वह गलत तथा अस्पष्ट है।[1] ऐसा क्यों हुआ होगा? यह प्रश्न आए बिना नहीं रहता। निर्ग्रन्थ-परंपरा जैसी अपनी पड़ोसी समकालीन और अति प्रसिद्ध परंपरा के चार यमों के बारे में बौद्ध ग्रन्थकार इतने अनजान हों या अस्पष्ट हों यह देखकर शुरू-शुरू में आश्चर्य होता है पर हम जब साम्प्रदायिक स्थिति पर विचार करते हैं तब वह अचरज गायब हो जाता है। हर एक सम्प्रदाय ने दूसरे के प्रति पूरा न्याय नहीं किया है। यह भी सम्भव है कि मूल में बुद्ध तथा उनके समकालीन शिष्य चतुर्याम का पूरा और सच्चा अर्थ जानते हों। वह अर्थ सर्वत्र प्रसिद्ध भी था इसलिए उन्होंने उसको बतलाने की आवश्यकता समझी न हो पर पिटकों की ज्यों-ज्यों संकलना होती गई त्यों-त्यों चतुर्याम के अर्थ स्पष्ट करने की आवश्यकता मालूम हुई। किसी बौद्ध भिक्षु ने कल्पना से उसके अर्थ की पूर्ति की, वही आगे ज्यों की त्यों पिटकों में चली आई और किसी ने यह नहीं सोचा कि चतुर्याम का यह अर्थ निर्ग्रन्थ-परंपरा को सम्मत है या नहीं? बौद्धों के बारे में भी ऐसा विपर्यास जैनों के द्वारा हुआ कहीं-कहीं देखा जाता है।[2] किसी सम्प्रदाय के मन्तव्य का पूर्ण सच्चा स्वरूप तो उसके ग्रन्थों और उसकी परंपरा से जाना जा सकता है।

(६)

उपोसथ-पौषध

इस समय जैन परंपरा में पौषध-व्रत का आचरण प्रचलित है। इसका प्राचीन इतिहास जानने के पहले हमें इसका वर्तमान स्वरूप संक्षेप में जान लेना चाहिए। पौषध-व्रत गृहस्थों का व्रत है। उसे स्त्री और पुरुष दोनों ग्रहण करते हैं। जो

---

१. दीघ० सु० २। दीघ० सुमंगला पृ० १६७

२. सूत्रकृतांग १ २ २. २४–२८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पौषधव्रत का ग्रहण करता है वह किसी एकान्त स्थान में या धर्म-स्थान में अपनी शक्ति और रुचि के अनुसार एक, दो या तीन रोज आदि की समय मर्यादा बाँध करके दुन्यवी सब प्रवृत्तियों को छोड़कर मात्र धार्मिक जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा करता है। वह चाहे तो दिन में एक बार भिक्षा के तौर पर अशन-पान लाकर खा-पी सकता है या सर्वथा उपवास भी कर सकता है। वह गृहस्थ-योग्य वेषभूषा का त्याग करके साधु-योग्य परिधान धारण करता है। संक्षेप में यों कहना चाहिए कि पौषधव्रत लेनेवाला उतने समय के लिए साधु-जीवन का उम्मेदवार बन जाता है।

गृहस्थों के अंगीकार करने योग्य बारह व्रतों में से पौषध यह एक व्रत है जो ग्यारहवाँ व्रत कहलाता है। आगम से लेकर अभी तक के समग्र जैनशास्त्र में पौषधव्रत का निरूपण अवश्य आता है। उसके आचरण व आसेवन की प्रथा भी बहुत प्रचलित है। कुछ भी हो हमें तो यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से पौषधव्रत के संबन्ध में निम्नलिखित प्रश्नों पर क्रमशः एक-एक करके विचार करना है—

(१) भ० महावीर की समकालीन और पूर्वकालीन निर्ग्रन्थ-परंपरा में पौषध-व्रत प्रचलित था या नहीं? और प्रचलित था तो उसका स्वरूप कैसा रहा?

(२) बौद्ध और दूसरी श्रमण परंपराओं में पौषध का स्थान क्या था? और वे पौषध के विषय में परस्पर क्या सोचते थे?

(३) पौषधव्रत की उत्पत्ति का मूल क्या है? और मूल में उसका बोधक शब्द कैसा था?

(१) उपासकदशा नामक अंगसूत्र जिसमें महावीर के दस मुख्य श्रावकों का जीवनवृत्त है उसमें आनन्द आदि सभी श्रावकों के द्वारा पौषधशाला में पौषध लिये जानेका वर्णन है इसी तरह भगवती-शतक १२, उद्देश्य १ में शंख श्रावक का जीवनवृत्त है। शंख को भ० महावीर का पक्का श्रावक बतलाया है और उसमें कहा है कि शंख ने पौषधशाला में अशन आदि छोड़कर ही पौषध लिया था जब कि शंख के दूसरे साथियों ने अशन सहित पौषध लिया था। इससे इतना तो स्पष्ट है कि पुराने समय में भी खान-पान सहित और खान-पान रहित पौषध लेने की प्रथा थी। उपर्युक्त वर्णन ठीक भ० महावीर के समय का है या बाद का इसका निर्णय करना सहज नहीं है। तो भी इसमें बौद्ध ग्रन्थों से ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बुद्ध के समय में निर्ग्रन्थ-परंपरा में पौषध व्रत लेने की प्रथा थी और सो भी आज के जैसी और भगवती आदि में वर्णित शंख आदि के पौषध जैसी थी क्योंकि अंगुत्तर निकाय में[1] बुद्ध ने स्वयं

१ अंगुत्तरनिकाय Vol. I. P, 206

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशाखा नाम की अपनी परम उपासिका के सम्मुख तीन प्रकार के उपोसथ का वर्णन किया है—उपोसथ शब्द निर्ग्रन्थ-परंपरा के पौषध शब्द का पर्याय मात्र है—१. गोपालक-उपोसथ, २ निगंठ उपोसथ और ३. आर्य उपोसथ।

इनमें से जो दूसरा 'निगंठ उपोसथ' है वही निर्ग्रन्थ-परम्परा का पौषध है। यद्यपि बुद्ध ने तीन प्रकार के उपोसथ में से आर्य उपोसथ को ही सर्वोत्तम बतलाया है, जो उनको अपने संघ में अभिमत था, तो भी जब 'निगंठ उपोसथ' का परिहास किया है, उसकी त्रुटि बतलाई है तो इतने मात्र से हम यह वस्तुस्थिति जान सकते हैं कि बुद्ध के समय में निर्ग्रन्थ-परंपरा में भी पौषध—उपोषथ की प्रथा प्रचलित थी। 'अंगुत्तर निकाय' के उपोसथ वाले शब्द बुद्ध के मुँह से कहलाये गए हैं वे चाहे बुद्ध के शब्द न भी हों तब भी इतना तो कहा जा सकता है कि 'अंगुत्तर निकाय' की वर्तमान रचना के समय निर्ग्रन्थ उपोषथ अवश्य प्रचलित था और समाज में उसका खासा स्थान था। पिटक की वर्तमान रचना अशोक से अर्वाचीन नहीं है तब यह तो स्वयं सिद्ध है कि निर्ग्रन्थ-परंपरा का उपोषथ उतना पुराना तो अवश्य है। निर्ग्रन्थ-परम्परा के उपोषथ की प्रतिष्ठा धार्मिक जगत् में इतनी अवश्य जमी हुई थी कि जिसके कारण बौद्ध लेखकों को उसका प्रतिवाद करके अपनी परम्परा में भी उपोषथ का अस्तित्व है ऐसा बतलाना पड़ा। बौद्धों ने अपनी परंपरा में उपोषथ का मात्र अस्तित्व ही नहीं बतलाया है पर उन्होंने उसे 'आर्य उपोसथ' कह कर उत्कृष्ट रूप से भी प्रतिपादन किया है और साथ ही निर्ग्रन्थ-परंपरा के उपोषथों को त्रुटिपूर्ण भी बतलाया है। बौद्ध-परंपरा में उपोषथ व्रत का प्रवेश आकस्मिक नहीं है बल्कि उसका आधार पुराना है। महावीर-समकालीन और पूर्वकालीन निर्ग्रन्थ-परंपरा में उपोषथ या पौषध व्रत की बड़ी महिमा थी जिसे बुद्ध ने अपने ढंग से अपनी परंपरा में भी स्थान दिया और बतलाया कि दूसरे सम्प्रदायवाले जो उपोषथ करते हैं वह आर्य नहीं है पर मैं जो उपोषथ कहता हूँ वही आर्य है। इसलिए 'भगवती' और 'उपासकदशा' की पौषध विषयक हकीक़त को किसी तरह अर्वाचीन या पीछे की नहीं मान सकते।

(२) यद्यपि आजीवक-परंपरा में भी पौषध का स्थान होने की सम्भावना होती है तो भी उस परंपरा का साहित्य हमारे सामने वैसा नहीं है जैसा बौद्ध और निर्ग्रन्थ-परंपरा का साहित्य हमारे सामने है। इसलिए पौषध के अस्तित्व के बारे में बौद्ध और निर्ग्रन्थ-परम्परा के विषय में ही निश्चयपूर्वक कुछ कहा जा सकता है। हम जिस 'अंगुत्तर निकाय' का ऊपर निर्देश कर आए हैं उसमें उपोषथ के संबन्ध में विस्तृत वर्णन है उसका संक्षिप्त सार यों है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"श्रावस्ती नगरी में कभी विशाखा नाम की उपासिका उपोषथ लेकर बुद्ध के पास आई और एक ओर बैठ गई तब उस विशाखा को संबोधित करके बुद्ध कहते हैं कि "हे विशाखे ! पहला उपोषथ गोपालक कहलाता है। जैसे सायंकाल में ग्वाले गायों को चराकर उनके मालिकों को वापस सौंपते हैं तब कहते हैं कि आज अमुक जगह में गायें चरीं, अमुक जगह में पानी पिया और कल अमुक-अमुक स्थान में चरेंगी और पानी पिएँगी इत्यादि। वैसे ही जो लोग उपोषथ ले करके खान-पान की चर्चा करते हैं कि आज हमने अमुक खाया, अमुक पिया और कल अमुक चीज खायेंगे, अमुक पान करेंगे इत्यादि। ऐसा कहनेवालों का अर्थात् उपोषथ लेकर उस दिन की तथा अगले दिन की खान-पान विषयक चर्चा करने वालों का उपोषथ गोपालक उपोषथ कहलाता है।

"निर्ग्रन्थ श्रमण अपने-अपने श्रावकों को बुलाकर कहते हैं कि हर एक दिशा में इतने योजन से आगे जो प्राणी हैं उनका दंड—हिंसक व्यापार-छोड़ो तथा सब कपड़ों को त्याग कर कहो कि मैं किसी का नहीं हूँ और मेरा कोई नहीं है इत्यादि। देखो विशाखे ! वे निर्ग्रन्थ-श्रावक अमुक योजन के बाद न जाने का निश्चय करते हैं और उतने योजन के बाद के प्राणियों की हिंसा को त्यागते हैं तब साथ ही वे मर्यादित योजन के अन्दर आनेवाले प्राणियों की हिंसा का त्याग नहीं करते इससे वे प्राणातिपात से नहीं बचते हैं। अतएव हे विशाखे ! मैं उन निर्ग्रन्थ-श्रावकों के उपोषथ को प्राणातिपातयुक्त कहता हूँ। इसी तरह, जब वे श्रावक कहते हैं कि मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है, मैं किसी का नहीं हूँ तब वे यह तो निश्चय ही जानते हैं कि अमुक मेरे माता-पिता हैं, अमुक मेरी स्त्री है, अमुक पुत्र आदि परिवार है। वे जब मन में अपने माता-पिता आदि को जानते हैं और साथ ही कहते हैं कि मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं, तब स्पष्ट ही, हे विशाखे ! वे उपोषथ में मृषा बोलते हैं। इस तरह गोपालक और निर्ग्रन्थ दोनों उपोषथ कोई विशेष लाभदायक नहीं हैं। परन्तु मैं जिस उपोषथ को करने के लिए उपदेश करता हूँ वह आर्य उपोषथ है और अधिक लाभदायक होता है। क्योंकि मैं उपोषथ में बुद्ध, धर्म और संघ, शील आदि की भावना करने को कहता हूँ जिससे चित्त के क्लेश क्षीण होते हैं। उपोषथ करनेवाला अपने सामने अर्हत् का आदर्श रख करके केवल एक रात, एक दिवस तक परिमित त्याग करता है और महान् आदर्शों की स्मृति रखता है। इस प्रयत्न से उसके मन के दोष अपने आप दूर हो जाते हैं। इसलिए वह आर्य उपोषथ है और महाफलदायी भी है।

'अंगुत्तर निकाय' के उपर्युक्त सार से हम इतना मतलब तो निकाल ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकते हैं कि उसमें बुद्ध के मुख से बौद्ध परंपरा में प्रचलित उपोषथ के स्वरूप की तो प्रशंसा कराई गई है और बाकी के उपोषथों की निन्दा कराई गई है। यहाँ हमें ऐतिहासिक दृष्टि से देखना मात्र इतना ही है कि बुद्ध ने जिस गोपालक उपोषथ और निर्ग्रन्थ उपोषथ का परिहास किया है वह उपोषथ किस-किस परंपरा के थे? निर्ग्रन्थ उपोषथ रूप से तो निःसंदेह निर्ग्रन्थ-परंपरा का ही उपोषथ लिया गया है पर गोपालक उपोषथ रूप से किस परम्परा का उपोषथ लिया है? यही प्रश्न है। इसका उत्तर जैन-परंपरा में प्रचलित पौषध-विधि और पौषध के प्रकारों को जानने से भलि-भाँति मिल जाता है। जैन श्रावक पौषध के दिन भोजन करते भी हैं इसी को लक्ष्य में रखकर बुद्ध ने उस साशन पौषध को गोपालक उपोषथ 'कहकर उसका परिहास किया है। जैन श्रावक अशनत्याग पूर्वक भी पौषध करते हैं और मर्यादित समय के लिए वस्त्र-अलंकार, कुटुम्ब-संबन्ध आदि का त्याग करते हैं तथा अमुक हद से आगे न जाने का संकल्प भी करते हैं इस बात को लक्ष्य में रखकर बुद्ध ने उसे निर्ग्रन्थ उपोषथ कहकर उसका मखौल किया है। कुछ भी हो पर बौद्ध और जैन ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से एक बात तो निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि पौषध व उपोषथ की प्रथा जैसी निर्ग्रन्थ-परंपरा में थी वैसी बुद्ध के समय में भी बौद्ध-परम्परा में थी और यह प्रथा दोनों परम्परा में आज तक चली आती है।

भगवती शतक ८, उद्देश ५ में गौतम ने महावीर से प्रश्न किया है कि गोशालक के शिष्य आजीवकों ने कुछ स्थविरों (जैन-भिक्षुओं) से पूछा कि उपाश्रय में सामयिक लेकर बैठे हुए श्रावक जब अपने वस्त्रादिका त्याग करते हैं और स्त्री का भी त्याग करते हैं तब उनके वस्त्राभरण आदिको कोई उठा ले जाए और उनकी स्त्री से कोई संसर्ग करे फिर सामायिक पूरा होने के बाद वे श्रावक अगर अपने कपड़े-अलंकार आदि को खोजते हैं तो क्या अपनी ही वस्तु खोजते हैं कि औरों की? इसी तरह जिसने उस सामायिक वाले श्रावकों की त्यक्त स्त्री का संग किया उसने उन सामायिक वाले श्रावकों की ही स्त्री का संग किया या अन्य की स्त्री का?

इस प्रश्न का महावीर ने उत्तर यह दिया है कि सामायिक का समय पूरा होने के बाद चुराए वस्त्रादिको खोजनेवाले श्रावक अपने ही वस्त्र आदि खोजते हैं, दूसरे के नहीं। इसी तरह स्त्री संग करनेवाले ने भी उस सामायिकधारी श्रावक की ही स्त्री का संग किया है ऐसा मानना चाहिए, नहीं कि अन्य की स्त्री का। क्योंकि श्रावक ने मर्यादित समय के लिए वस्त्र-आभूषण-आदि का मर्यादित त्याग किया था; मन से बिलकुल ममत्व छोड़ा न था। इस गौतम-महावीर के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नोत्तर से इतना तो स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थ-श्रावक के सामायिक व्रत के विषय में (जो पौषध व्रत का ही प्राथमिक रूप है) जो आजीवकों के द्वारा परिहासमय पूर्वपक्ष भग० श० ८, उ० ५ में देखा जाता है वही दूसरे रूप में ऊपर वर्णन किये गए अंगुत्तरनिकाय गत गोपालक और निर्ग्रन्थ उपोषथ में प्रतिबिंबित हुआ जान पड़ता है। यह भी हो सकता है कि गोशालक के शिष्यों की तरफ से भी निर्ग्रन्थ श्रावकों के सामायिकादि व्रत के प्रति आक्षेप होता रहा हो और उसका उत्तर भगवती में महावीर के द्वारा दिलाया गया हो। आज हमारे सामने गोशालक की आजीवक-परम्परा का साहित्य नहीं है पर वह एक श्रमण-परम्परा थी और अपने समय में प्रबल भी थी तथा इन परम्पराओं के आचार-विचारों में अनेक बातें बिलकुल समान थीं। यह सब देखते हुए ऐसा भी मानने का मन हो जाता है कि गोशालक की परम्परा में भी सामायिक-उपोषथादिक व्रत प्रचलित रहे होंगे। इसीलिए गोशालक ने या उसके अनुयायियों ने बुद्ध के अनुयायियों की तरह निर्ग्रन्थ-परम्परा के सामायिक-पौषध आदि व्रतों को निःसार बताने की दृष्टि से उनका मखौल किया होगा। कुछ भी हो पर हम देखते हैं कि महावीर के मुख से जो जवाब दिलाया गया है वह बिलकुल जैन मंतव्य की यथार्थता को प्रकट करता है। इतनी चर्चा से यह बात सरलता से समझ में आ जाती है कि श्रमण-परंपरा की प्रसिद्ध तीनों शाखाओं में पौषध या उपोषथ का स्थान अवश्य था और वे परंपराएँ आपस में एक दूसरे की प्रथा को कटाक्ष-दृष्टि से देखती थीं और अपनी प्रथा का श्रेष्ठत्व स्थापित करती थीं।

(३) संस्कृत शब्द 'उपवसथ' है, उसका पालि रूप उपोसथ है और प्राकृत रूप पोसह तथा पोसध है। उपोसथ और पोसह दोनों शब्दों का मूल तो उपवसथ शब्द ही है। एक में व का उ होने से उपोसथ रूप की निष्पत्ति हुई है, जब कि दूसरे में उ का लोप और थ का ह तथा ध होने से पोसह और पोसध शब्द बने हैं। आगे पालि के उपर से अर्ध संस्कृत जैसा उपोषथ शब्द व्यवहार में आया जब कि पोसह तथा पोसध शब्द संस्कृत के ढाँचे में ढलकर अनुक्रम से पौषध और प्रौषध रूप से व्यवहार में आये। संस्कृत प्रधान वैदिक-परम्परा में, यद्यपि उपवसथ शब्द शास्त्रों में प्रसिद्ध है तथापि पालि उपोसथ के उपर से बना हुआ उपोषथ शब्द भी वैदिक लोक-व्यवहार में व्यवहृत होता है। जैन-परम्परा जब तक मात्र प्राकृत का व्यवहार करती थी तब तक पोसह तथा पोसध शब्द ही व्यवहार में रहे पर संस्कृत में व्याख्याएँ लिखी जाने के समय से श्वेताम्बरीय व्याख्याकारों ने पोसह शब्द का मूल बिना जाने ही उसे पौषध रूप से संस्कृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया। जो दिगम्बर व्याख्याकार हुए उन्होंने पौषध ऐसा संस्कृत रूप न अपनाकर पोसध का प्रौषध ही संस्कृत रूप व्यवहृत किया। इस तरह हम देखते हैं कि एक ही उपवसथ शब्द जुदे-जुदे लौकिक प्रवाहों में पड़कर उपोषथ, पोसह, पोसघ, पौषध, प्रौषध ऐसे अनेक रूपों को धारण करने लगा। वे सभी रूप एक ही कुटुम्ब के हैं।

पोसह आदि शब्दों का मात्र मूल ही एक नहीं है पर उसके विभिन्न अर्थों के पीछे रहा हुआ भाव भी एक ही है। इसी भाव में से पोसह या उपोसथ व्रत की उत्पत्ति हुई है। वैदिक-परंपरा यज्ञ-यागादिको मानने वाली अतएव देवों का यजन करने वाली है। ऐसे खास-खास यजनों में वह उपवास व्रत को भी स्थान देती है। अमावास्या और पौर्णमासी को वह 'उपवसथ' शब्द से व्यवहृत करती है। क्योंकि उन तिथियों में वह दर्शपौर्णमास नाम के यज्ञों का विधान करती है[1] तथा उसमें उपवास जैसे व्रत का भी विधान करती है। सम्भवतः इसलिए वैदिक परंपरा में अमावस्या और पौर्णमासी-उपवसथ कहलाती हैं। श्रमण-परंपरा वैदिक परंपरा की तरह यज्ञ-याग या देवयजन को नहीं मानती। जहाँ वैदिक परंपरा यज्ञ-यागादि व देवयजन द्वारा आध्यात्मिक प्रगति बतलाती है, वहाँ श्रमण-परंपरा आध्यात्मिक प्रगति के लिए एक मात्र आत्मशोधन तथा स्वरूप-चिन्तन का विधान करती है। इसके लिए श्रमण-परंपरा ने भी मास की वे ही तिथियाँ नियत कीं जो वैदिक-परंपरा में यज्ञ के लिए नियत थीं। इस तरह श्रमण-परंपरा ने अमावास्या और पौर्णमासी के दिन उपवास करने का विधान किया। जान पड़ता है कि पन्द्रह रोज के अन्तर को धार्मिक दृष्टि से लम्बा समझकर उसने बीच में अष्टमी को भी उपवास पूर्वक धर्मचिन्तन करने का विधान किया। इससे श्रमण-परंपरा में अष्टमी तथा पूर्णिमा और अष्टमी तथा अमावास्या में उपवास-पूर्वक आत्मचिन्तन करने की प्रथा चल पड़ी[2]। यही प्रथा बौद्ध-परंपरा में 'उपोसथ' और जैनधर्म परम्परा में 'पोसह' रूप से चली आती है। परम्परा कोई भी हो सभी अपनी-अपनी दृष्टि से आत्म-शान्ति और प्रगति के लिए ही उपवास-व्रत का विधान करती है। इस तरह हम दूर तक सोचते हैं तो जान पड़ता है कि पौषध व्रत की उत्पत्ति का मूल असल में आध्यात्मिक प्रगति मात्र है। उसी मूल से कहीं एक रूप में तो कहीं दूसरे रूप में उपवसथ ने स्थान प्राप्त किया है।

---

१. कात्यायन श्रौतसूत्र ४. १५. ३५.।

२. उपासकदशांग अ० १. 'पोसहोववासस्स' शब्द की टीका.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब भी एक प्रश्न तो बाकी रह ही जाता है कि क्या वैदिक-परंपरा में से श्रमण-परंपरा में उपोसथ या पोसह व्रत आया या श्रमण परंपरा के ऊपर से वैदिक परंपरा ने उपवसथ का आयोजन किया ? इसका उत्तर देना किसी तरह सहज नहीं है। हजारों वर्षों के पहले किस प्रवाह ने किसके ऊपर असर किया इसे निश्चित रूप से जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। फिर भी हम इतना तो कह ही सकते हैं कि वैदिक-परंपरा का उपवसथ प्रेय का साधन माना गया है, जब कि श्रमण-परंपरा का उपोसथ या पोसह श्रेय का साधन माना गया है। विकास क्रम की दृष्टि से देखा जाए तो मनुष्य-जाति में प्रेय के बाद श्रेय की कल्पना आई है। यदि यह सच हो तो श्रमण-परंपरा के उपवास या पोसह की प्रथा कितनी ही प्राचीन क्यों न हो, पर उसके ऊपर वैदिक परंपरा के उपवसथ यज्ञ की छाप है।

(७)

भाषा-विचार

महावीर समकालीन और पूर्वकालीन निर्ग्रन्थ-परंपरा से संबन्ध रखनेवाली अनेक बातों में भाषा-प्रयोग, त्रिदंड और हिंसा आदि से विरति का भी समावेश होता है। बौद्ध-पिटकों और जैन-आगमों के तुलनात्मक अध्ययन से उन मुद्दों पर काफी प्रकाश पड़ता है। हम यहाँ उन मुद्दों में से एक-एक लेकर उस पर विचार करते हैं:—

'मज्झिम निकाय के 'अभयराज सुत्त' में भाषा-प्रयोग सम्बन्धी चर्चा है। उसका संक्षिप्त सार यों है—कभी अभयराज कुमार से ज्ञातपुत्र महावीर ने कहा कि तुम तथागत बुद्ध के पास जाओ और प्रश्न करो कि तथागत अप्रिय वचन बोल सकते हैं या नहीं ? यदि बुद्ध हाँ कहें तो वह हार जाएँगे, क्योंकि अप्रिय-भाषी बुद्ध कैसे ? यदि ना कहें तो पूछना कि तो फिर भदन्त ! आपने देवदत्त के बारे में अप्रिय कथन क्यों किया है कि देवदत्त दुर्गतिगामी और नहीं सुधरने योग्य है ?

ज्ञातपुत्र की शिक्षा के अनुसार अभयराज कुमार ने बुद्ध से प्रश्न किया तो बुद्ध ने उस कुमार को उत्तर दिया कि बुद्ध अप्रिय कथन करेंगे या नहीं यह बात एकान्त रूप से नहीं कही जा सकती। बुद्ध ने अपने जवाब में एकान्त रूप से अप्रिय कथन करने का स्वीकार या अस्वीकार नहीं करते हुए यही बतलाया कि अगर अप्रिय भी हितकर हो तो बुद्ध बोल सकते हैं परन्तु जो अहितकर होगा वह भले ही सत्य हो उसे बुद्ध नहीं बोलेंगे। बुद्ध ने वचन का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org